समुद्रगुप्त का प्रशस्ति-लेख (प्रयाग)

मूलपाठ

१. ·····कुर्ल्यः (कुल्यैः) (?) ·····स्वैः·····ातस

२. [यस्य ?] [॥] [१]

३. ·····मुंव (सुंव/पुंव) [?] त्र·····

४. [स्फ] रद्वं [?] क्षः स्फुटोद्ध [˙] सित····प्रवितत [॥] [२]

५. यस्य प्र [ज्ञानु] षंगोचित-मुख-मनसः शास्त्र-त (त्त्व) ार्त्थ-भर्तुः-स्तब्धो (ह)˘ —˘ नि˘ —˘ — (नोच्छू) नोच्छृ - -[।]

६. [स] त्काव्य श्री विरोधान्युध (बुध)-गुणित-गुणाज्ञाहतानेव कृत्वा- [वि] द्वल्लोके [ऽ] वि [ना] [शि] स्फुट बहु-कविताः कीर्ति-राज्यं भुनक्ति। [॥] [३]

७. [आ] र्य्यो होत्युपगुह्य भाव-पिशुनैरुत्कर्ण्णितैरोमभिः सभ्येषूच्छ्वसितेषुतुल्य-कुलज म्लाननोद्वीक्षि [त] : [।]

८. [स्ने] ह-व्यालुलितेन वाष्पगुरुणा तत्वेक्षिणा चक्षुषा यः पित्राभिहितो नि [रीक्ष्य] निखि [लां] [पाह्येव] [मुर्वी] मिति॥ [४]

९. [दृ] ष्ट्वा कर्माण्यनेकान्यमनुज—सदृशान्य [द्भु/द्रभु] तोद्भिन्न-हर्षा भ (ा) वैरास्वादय [न्तः]˘˘˘··· (के) चित [॥]

१०. वीर्योत्तप्ताश्च केचिच्छिरणमुपगता यस्य वृत्ते [ऽ] प्रणामेप्य [त्ति ?] [ग्रस्तेषु] — ˘˘˘—˘˘—(॥) [५]

११. संग्रामेषु स्वभुजविजिता नित्यमुच्चापकाराः श्वः श्वो मान प्रः ˘˘˘˘– – ˘–˘ [।]

१२. तोषोतुङ्गैस्फुट-बहु-रस—स्नेह-फुल्लैर्म्मनोभिः पश्चात्ताप व ˘˘˘˘– – ˘म [˙] स्य (।) द्वसन्त [म ?] (६)

१३. उद्वेलोदित-बाहु-वीर्य्य-रभसादेकेन येन क्षणादुन्मूल्याच्युतनागसेन ग ˘ – – ˘– – ˘– [×]

१४. दण्डै ग्रीहयतैव कोतकुलजं पुष्पाह्वये क्रीडता सूर्य्ये (?) नित्य (?) ˘ – – तट ˘– – ˘– – (॥) (७)

१५. धर्म्म-प्राचीर-बन्ध शशि-कर-शुचयः कीर्त्तयः स-प्रताना वैदुष्यं तत्त्व-भेदि — प्रशम ˘ ˘ ˘ कु.....य ˘ मु.....तार्थम् (।)

१६. (अद्धेयेयः) सूक्तमार्ग्गः कवि-मति-विभवोत्सारणं चापि काव्यं को नु स्याद्यो [ऽ] स्य नस्याद्गुण-मति-(वि) दुषां ध्यानपात्रं य एकः (॥) (८)

१७. तस्य विविध-समर शतावतरण-दक्षस्य स्वभुज-बल परावक्कमैकबन्धोः परावक्रमाङ्कस्य परशु-शर शंकु-शक्ति-प्रसासितोमर

१८. भिन्दिपालन-न (।) राच-वैतस्तिकाद्यनेक प्रहरण-विरूढ़ा-कुल-व्रण-शत्ताङ्कशोभा-समुदयोपचित-कान्ततर-वर्ष्मणः

१९. कौसलकमहेन्द्र-माह (।) कान्तारकव्याघ्रराज-कौरालकमण्टराज—पैष्ठपुरक महेन्द्रगिरि—कौट्टूरकस्वामिदत्तेरण्डपल्लकदमन—कञ्चेय—कविष्णुगोपाव-मुक्तक—

२०. नीलराज—वैङ्गेयक हस्तिवर्म्मपालक्ककोग्रसेन—देवराष्ट्रक कुबेर—कौस्थल-पुरक-धनञ्जय-प्रभृति-सर्व्वदक्षिणापथराजग्रहण-मोक्षानुग्रहजनित-प्रतापोन्मि-श्रमाहा—भाग्यस्ये

२१. रुद्रदेव मतिल-नागदत्त चन्द्रवम्म-गणपतिनाग नागसेनाच्युत नन्दिबल-वर्म्माद्यनेकार्य्यार्क्त्त(वर्त)राज-प्रसभोद्धरणोद्वृत्त-प्रभाव-महतः परिचारिकीकृत सर्व्वाटविक-राजस्य

२२. समतट-डवाक-कामरूप-नेपाल-कर्त्तपुरादिप्रत्यन्त—नृप-तिभिम्मालिवार्जुना-यन योधेय-माद्रकाभीर-प्रार्जून सनकानीक-काक-खरपरिकाविभिश्च सर्व्वकर-दानाज्ञा-करण प्रणामागमन

२३. परितोषित प्रचण्डशासनस्य अनेक भ्रष्टराज्योत्सन्न-राजवंश-प्रतिष्ठापनोदभूत-निखिल—भु (व) न (विचरणशा)न्त-यशसः दैवपुत्रषाहिषाहानुषाहिशक-मुरुण्डैः सैंहलकादिभिश्च

२४. सर्व्वद्वीप वासिभिरात्मनिवेदन—कन्योपायनदान-गरुत्मदकस्वविषय—भुक्ति-शासन (य) । चनाद्युपाय-सेवाकृत-बाहु-वीर्य्य-प्रसर-धरणि-बन्धस्य पृथि-व्यांम प्रतिरथस्य

२५. सुचरित शतालंकृतानेक-गुण—गणोत्सिक्तिभिश्चरण तलप्रमृष्टान्यनरपतिकीर्तेः साध्वसाधूदय-प्रलय-हेतु-पुरुषस्याचिन्त्यस्य भक्त्यावनति-मात्र ग्राह्य-मृदुहृदय-स्यानुकम्पावतो (ऽ) नेक-गो-शत-सहस्र-प्रदायिन (:)

२६. [कृप] ण-दीनानाथातुर-जनोद्धरण-मन्त्रदीक्षाभ्युपगत मनसः समिद्धस्य विग्रहवती लोकानुग्रहस्य धनद-वरुणेन्द्रान्तक-समस्यस्वभुज-बल-विजितानेक नरपति विभवप्रत्यर्प्पणा-नित्यं व्यापृतायुक्तपुरुषस्य

२७. निशितविग्धमति-गान्धर्व्व ललितैर्व्राडित त्रिदशपतिगुरुतुम्बुरुनारदादंर्व्विद्वज्ज-नोपज्ञीव्यानेक-काव्य-विक्रयाभिः प्रतिष्ठित कविराजशब्दस्य सुचिर स्तोतव्यानेकद्भुतोदार—चरितस्य

२८. लोकसमय-विक्रयानुविधान-मात्र-मानुषस्य-लोक:धाम्नो······देवस्य···· महाराजश्रीगुप्तप्रपौत्रस्दु महाराज श्री घटोत्कच पौत्रस्य महाराजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्त पुत्रस्य

२९. लिच्छवि-दौहित्रस्य महादेव्यां कुमारदेव्यामुत्पन्नस्य महाराजाधिराज श्रीसमुद्रगुप्तस्य सर्व्व-पृथिवी-विजय-जनितोदय-व्याप्त-निखिलावनितलां कीर्तिमितस्त्रिदशपति

३०. भवन-गमनावाप्त-ललित-सुख-विचरणामाचक्षाण...इव...भुवो बाहुरयमु-च्छ्रितः स्तम्भः (:) यस्य। प्रदान भुजविक्क्रम-प्रशम-शास्त्रवाक्योदये—रुपर्य्यपरि—संचयोच्छ्रितमनेकमार्ग्ग यशः (।)

३१. पुनाति भुवनत्रयं पशुपतेर्ज्जटान्तर्गुहा
निरोध-परिमोक्ष-शीघ्रमिवपाण्डुगाङ्ग (पयः) [॥] [९]
एतच्च काव्यमेपामेद भट्टारकपादानां दासस्य समीप-परिसर्प्पणानुग्रहोन्मीलित-मतेः

३२. खाद्यटपाकिकस्य महादण्डनायक-ध्रुवभूतिपुत्रस्य सान्धिविग्रहिककुमारामात्य-म (हा दण्डनाय) क—हरिषेणस्य सर्व्व-भूत हितसुखायास्तु।

३३. अनुष्ठितं च परमभट्टारक-पादानुध्यातेनमहादण्डनायकतिल भट्टकेन।

हिन्दी अनुवाद—अपने कुलवालों के द्वारा.......जिसका.......धनुष की टङ्कार से.......ध्वंस किया........विस्तार किया। जिसकी बुद्धि सत्संगसुख की कामना करती है। जो शास्त्र के तत्वार्थ का पोषकण.....निश्चल.........। सत्काव्य और श्री के विरोध के प्रबुद्ध लोगों के गुणित गुणों की आज्ञा से नष्ट करके विद्वत समाज में अविनाशी (नष्ट न होने वाली) स्फुटकाव्य से प्राप्त कीर्तिरूपी राज्य का उपभोग करता है। तुम श्रेष्ठ (आर्य) हो, कहते हुए पिता द्वारा भावुक होकर रोमांचपूर्वक आलिंगित किया गया। (जिससे) सभासद हर्ष से उच्छ्वसित थे, जिसे समान कुल वाले (बन्धु-बान्धव) ईर्ष्यावश मलिन मुख होकर देख रहे थे। स्नेह से विह्वल, अश्रुपूरित नयनों से तत्वदर्शी दृष्टि द्वारा देखते हुए पिता ने कहा, तुम इस सम्पूर्ण पृथ्वी का पालन करो। जिसके अनेक अद्‌भुत मानवेतर कार्यों को देखकर कुछ लोग अत्यन्त प्रसन्न होते थे और कुछ उसके शौर्य को देख कर संतप्त होते थे तथा (कुछ) अन्य प्रणाम करते हुए उसकी शरण में आ जाते थे। जो पीड़ितों के लिए अपकार करने वालों को युद्ध में जीतता था।

आनन्द से युक्त अत्यन्त रस और स्नेह से प्रफुल्लित मन से.........पश्चाताप ....वसंत में

जिसने अत्यन्त शक्तिशाली भुजाओं के बल से क्षणमात्र में अच्युत, नागसेन और ग (गणपति नाग) का उन्मूलन किया.....अपनी सेना द्वारा कोटकुलज को बन्दी बनाया और पुष्प नामक नगर में क्रीडा की (आनन्दोत्सव मनाया)। सूर्य नित्य....तट।

जिसका धर्म प्राचीर के समान दृढ़ था, कीर्ति चन्द्रकिरणों के समान उज्ज्वल व विस्तीर्ण थी। जिसकी विद्वत्ता शास्त्र के तत्त्वों का भेदन करने वाली थी।

जो वेदों द्वारा प्रतिपादित सूक्तमार्ग का अध्येता-कवियों के बुद्धि-वैभव को प्रकाशित करने वाली कविता की रचना करता था। ऐसा कौन-सा गुण था, जो उसमें नहीं था (अर्थात वह सर्वगुणसम्पन्न था) गुणवान और विद्वानों का वह एकमात्र ध्येय था।

जो विभिन्न प्रकार के शतयुद्धों के अवतरण में दक्ष था। भुजबल को एकमात्र मित्र समझने वाला पराक्रमी था तथा परशु, बाण, शंकु, प्रास, तलवार, तोमर, भिन्दिपाल, नाराच, वैतस्तिक आदि विविध अस्त्र-शस्त्र के घावों से सुशोभित शरीर वाला था।

कौशल का महेन्द्र, महाकान्तार का व्याघ्रराज, कैरल (कौरल) का मण्टराज, पिष्टपुर का महेन्द्रगिरि, कोट्टुर का स्वामीदत्त, एरण्डपल्ल का दमन, काँची का विष्णुगोप, अवमुक्त का नीलराज, वेंगी का हस्ति वर्मन, पालक्क का उग्रसेन, देवराष्ट्र का कुबेर और कुस्थलपुर का धनञ्जय आदि समस्त दक्षिणापथ के राजाओं को ग्रहण (बंदी) करके मुक्त (छोड़ देना) करने के अनुग्रह से उत्पन्न प्रताप से युक्त सौभाग्यवान था।

जिसने रुद्रदेव मतिल, नागदत्त, चन्द्रवर्मन, गणपतिनाग, नागसेन, अच्युत, नन्दि और बलवर्मा आदि आर्यावर्त के अनेक राजाओं को शक्तिपूर्वक उखाड़कर अपने प्रभुत्व का विस्तार किया और समस्त आटविक प्रदेश के राजाओं को अपना सेवक बनाया।

समतट, डवाक, कामरूप, नेपाल, कर्तृपुर आदि सीमान्त राज्यों तथा मालवा, आर्जुनायन, यौधेय, माद्रक, आभीर, प्रार्जुन, सनकानीक, काक, खरपरिक आदि समस्त जातियों ने अनेक प्रकार से कर देकर, आज्ञापालन और विनीतभाव के साथ समय-समय पर उपस्थित होकर जिसके प्रचण्ड शासन के प्रति निष्ठा का प्रदर्शन किया। जो अनेक भ्रष्ट राज्यों एवं राजवंशों को पुनः प्रतिष्ठित करने से उत्पन्न समस्त संसार में फैले हुए शांत यश वाला था। जिसकी दैव पुत्र, शाहि, शाहानुशाहि,शक, मुरुण्ड तथा सिंहल आदि समस्त द्वीपवासी आत्मनिवेदन, कन्योपायन, गरुड़ चिह्नांकित आज्ञापत्र प्राप्त कर विभिन्न प्रकार से सेवा करते थे, जिसने भुजाओं के बल से समस्त पृथ्वी को आबद्ध कर लिया था, सम्पूर्ण पृथ्वी पर जिसका कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं था।

जो सैकड़ों सत्कार्यों से अलंकृत, अनेक गुण समूहों द्वारा अभिषिक्त चरणों से राजाओं की कीर्ति को पोंछने वाला, साधुओं के उदय (उदार) और असाधु के लिए प्रलयकारक, अचिन्त्य पुरुष, भक्ति और विनम्रता से मृदु-हृदय हो जाने वाला दयावान, शत सहस्र गायों को दान करने वाला, कृपण, दीन, अनाथ और दुखियों का उद्धारक, मंत्रदीक्षित अन्तःकरण वाला, लोकानुग्रह की साक्षात प्रतिमा, कुबेर, वरुण,

इन्द्र और यम के सदृश, जिसके द्वारा नियुक्त दास उसके भुजबल से विजित प्रदेशों के राजाओं का वैभव लौटाने में सन्नद्ध थे, जिसने अपनी तीक्ष्ण और विदग्ध बुद्धि से तथा संगीत कला के ज्ञान से वृहस्पति, संगीताचार्य तुम्बरु और नाद आदि को लज्जित कर दिया था, जो विद्वानों के उपजीव्य, अनेक काव्यों की रचना से कविराज शब्द को प्रतिष्ठित करने वाला था, जिसके अनेक अद्‌भुत और उदार चरित स्तुति करने योग्य थे, जो लौकिक कार्यों के पालन मात्र से ही मनुष्य था अन्यथा इस लोक में निवास करने वाला देवस्वरूप था। महाराज श्रीगुप्त का प्रपौत्र, महाराज श्री घटोत्कच का पौत्र, महाराजधिराज श्रीचन्द्रगुप्त का पुत्र, लिच्छविकुल का दौहित्र, महादेवी कुमार देवी से उत्पन्न समुद्रगुप्त का सम्पूर्ण पृथ्वी को विजित करने से उत्पन्न यश समस्त संसार में व्याप्त था।

यहाँ से इन्द्र के भवन तक पहुँचने वाली, ललित तथा सुखमय गतिवाली कीर्ति को सूचित करने वाला, पृथ्वी की भुजा के समान यह उन्नत स्तम्भ था। जिसका यश, दान, भुजाओं का पराक्रम, प्रज्ञा एवं शास्त्रवाक्य, उदय से ऊपर-ऊपर अनेक उन्नत मार्गों से संचरित होता हुआ त्रिलोकों को भगवान शिव की जटा की अन्तर्गुहा में अवरुद्ध, परिमुक्त एवं शीघ्रता से प्रभावित होते हुए उज्ज्वल गंगाजल के समान पवित्र करता है। यह काव्य इन्हीं स्वामी के चरणों के दास, निरन्तर समीप रहने के अनुग्रह के कारण उन्मीलित बुद्धि वाले खाद्यटपाकिक महादंडनायक ध्रुवभूति के पुत्र संधिविग्रहिक, कुमारामात्य, महादंडनायक हरिषेण की रचना सब प्राणियों के हित एवं सुख के लिए है।

परमभट्टारक के श्रीचरणों का निरन्तर ध्यान करने वाले महादण्डनायक तिलभट्ट ने इसको अनुष्ठित (स्थापित) किया।

विवरण—समुद्रगुप्त की यह प्रशस्ति ३५ फीट ऊँचे गोलाकार स्तम्भ पर अंकित है। इस स्तम्भ पर पहले से ही मौर्यसम्राट अशोक का एक लेख अंकित था। ऐसा माना जाता है कि यह स्तम्भ पहले कौशाम्बी में स्थापित था और वहाँ से किसी मुगल शासक, सम्भवतः जहाँगीर, द्वारा प्रयाग लाया गया और गंगा-यमुना के किनारे स्थित दुर्ग में स्थापित किया गया। यह स्तम्भ आज भी वहीं स्थित है। इस विचार के सत्यापनार्थ यह उल्लेखनीय है कि अशोक के लेख को कौशाम्बी के महामात्रों को सम्बोधित करके लिखा गया है। चीनी यात्री युआन-च्वांग ने भी अपने प्रयाग (पो-लो-ये-किया) प्रवास के वर्णन में इस स्तम्भ की उपस्थिति अंकित नहीं की है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय तक यह स्तम्भ वहाँ नहीं था। सम्भवतः यह जहाँगीर के काल में वहाँ से हटाया गया, क्योंकि इस पर जहाँगीर का भी एक लेख अंकित है।

इस अभिलेख का सर्वप्रथम पाठन १८३४ ई० में कैप्टेन ए० ड्रायर द्वारा किया गया। बाद में डब्ल्यू०एच० मिल, जेम्स प्रिंसेप, भाऊदाजी और फ्लीट आदि ने कुछ सुधारों के साथ इसका पाठ व व्याख्या प्रस्तुत की।

इस अभिलेख की रचना समुद्रगुप्त के संधिविग्रहिक, कुमारामात्य, दण्डनायक हरिषेण ने की थी, जो खाद्यात्पाकिक, महादण्डनायक ध्रुवभूति का पुत्र था। यह ज्ञान भी इसी अभिलेख की पंक्तियों से प्राप्त होता है। पी०एल० गुप्त के अनुसार "यह अभिलेख एक चम्पू काव्य (गद्य-पद्य मिश्रित रचना) है, इसमें समुद्रगुप्त की प्रशस्ति, उसके गुणों और उसकी सैनिक सफलताओं का वर्णन है। इस रूप में यह उसके शासनकाल का प्रमुख विवरण है।"

इस अभिलेख के रचना व उत्कीर्णन-काल के विषय में विद्वानों में कुछ मतभेद है। सर्वप्रथम जेम्स प्रिंसेप ने यह विचार प्रकट किया कि यह लेख चन्द्रगुप्त द्वितीय ने समुद्रगुप्त की मृत्यूपरान्त लिखवाया था। फ्लीट भी इस विचार से सहमत हैं। किन्तु ब्यूलर ने इस मत का खण्डन करते हुए कहा है कि इस लेख में ऐसा कुछ भी नहीं है, जिससे इसे समुद्रगुप्त की मृत्यूपरान्त का लेख माना जा सके। स्मिथ, मजूमदार प्रभृत विद्वानों ने भी यही विचार प्रकट किया है।। बी०सी० छाबड़ा ने भी इसे निर्विवाद रूप से समुद्रगुप्त के कार्य-काल में उत्कीर्णित लेख स्वीकार किया है।

इस लेख के विषय-प्रतिपादन से ऐसा प्रतीत होता है कि हरिषेण, जो विभिन्न पदों पर नियुक्त था, संभवतः समुद्रगुप्त के साथ उसके विजय अभियानों में गया था, इसीलिए उसने युद्ध में विजयी राजा का अत्यन्त प्रभावपूर्ण व स्वाभाविक वर्णन किया है, साथ ही प्रत्येक शत्रु का भी नामोल्लेख किया है जिसे समुद्रगुप्त ने परास्त किया था।

अभिलेख के प्रारम्भिक छः श्लोकों में समुद्रगुप्त की शिक्षा, उसके उत्तरदायित्व व महान पद ग्रहण करने की तैयारी का उल्लेख है। इसमें युवा समुद्रगुप्त का वर्णन है। यद्यपि प्रथम दो श्लोक लगभग नष्ट हो चुके हैं, किन्तु जो थोड़े-बहुत शब्द बचे हैं, उनके आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उसने अपने पिता के जीवन-काल में ही कुछ सफल अभियान किए थे। उसकी विद्याध्ययन में रुचि एवं युवराज पद की प्राप्ति का भी संकेत इस अभिलेख से मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि समुद्रगुप्त को युवराज पद प्राप्त करने के लिए विरोध का भी सामना करना पड़ा था। इन विरोधियों का नेतृत्व संभवत काच कर रहा था। इस अभिलेख से चन्द्रगुप्त द्वारा समुद्रगुप्त को उत्तराधिकारी चुने जाने और भाव विह्वल होकर आलिंगित करने का उल्लेख मिलता है। साथ ही सभासदों की प्रसन्नता और तुल्य कुलजों के मुख-मलिन होने का भी उल्लेख है। लेख की आगे की पंक्तियों में युद्ध, विजय, पराजय, शरण, प्रणाम आदि शब्दों से संकेत मिलता है कि उत्तराधिकार प्राप्त करने के बाद समुद्रगुप्त को युद्ध करने पड़े थे।

इसके पश्चात् समुद्रगुप्त ने अच्युत, नागसेन और गणपतिनाग को पराजित किया और कोटकुलज को बन्दी बनाकर पुष्पनगर (पाटलिपुत्र अथवा कन्नौज) में

आनन्द मनाया। ऐसा माना जाता है कि जिस समय समुद्रगुप्त उत्तराधिकार के संकट से जूझ रहा था, उसी समय इन राजाओं ने संगठित होकर गृहकलह में व्यस्त समुद्रगुप्त पर आक्रमण किया। इन राजाओं की पहचान निम्नलिखित रूप में की जाती है—

अच्युत—यह अहिच्छत्र का नागवंशीय राजा था। इसके सिक्कों पर 'अच्यु' लेख प्राप्त होता है।

नागसेन—पुराणों में उल्लिखित चम्पावती अथवा पद्मावती का शासक नागसेन कहलाता था।

गणपतिनाग—गणपतिनाग को एक हस्तलिखित ग्रन्थ में धाराधीश कहा गया है। मथुरा से प्राप्त सिक्कों के आधार पर उसे मथुरा का शासक माना जाता है।

कोट-कुल (कोत-कुल)—सिक्कों के आधार पर राधाकुमुद मुकर्जी कोट-कुलजों का राज्य कोसल में और रायचौधुरी गंगा के ऊपरी भाग में मानते हैं। पी०एल० गुप्त के अनुसार कोत-लोग गंगा घाटी के उपरले भाग में दक्षिण-पंजाब में राज्य करते थे, जहाँ पुष्पपुर अथवा प्राचीन कान्यकुब्ज (कन्नौज) अवस्थित है।

समुद्रगुप्त के विजय-अभियानों से यह स्पष्ट है कि वह दिग्विजय की भावना से ओत-प्रोत था और अपने साम्राज्य का अधिकतम विस्तार करना उसके जीवन का मुख्य लक्ष्य था। समुद्रगुप्त के सफल सेनापतित्व और अपराजेय पौरुष के कारण डॉ० स्मिथ ने उसे 'भारतीय नेपोलियन' कहा है। परन्तु समुद्रगुप्त एक कुशल राजनीतिज्ञ भी था और इसीलिए अपने साम्राज्य को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए उसने अपने विजय अभियानों के पश्चात समस्त विजित प्रदेशों को अपने साम्राज्य में विलीन न करके कुछ को अपना आधिपत्य स्वीकार करा कर और कभी पराजित करने के पश्चात मुक्त करके अपने साम्राज्य के साथ ही अपने प्रभुत्व का भी विस्तार किया। जैसा कि एच०सी० रायचौधुरी ने लिखा है—"It was the aim of Samudragupta to bring about the political unification of India and make himself an *'Ekrat'* or sole ruler like Mahapadma."

इस प्रकार समुद्रगुप्त ने सर्वप्रथम उपरोल्लिखित राज्यों को अपने अधीन किया, जिन्होंने उसके भाइयों को उसके विरुद्ध सहायता दी थी और गुप्तवंश की आन्तरिक कलह का लाभ उठाने का प्रयास किया था। गंगा-यमुना दोआब में अपना साम्राज्य स्थापित करने के पश्चात उसने दक्षिणापथ अभियान प्रारम्भ किया। जिसमें उसने निम्नलिखित बारह राजाओं से युद्ध किया—

कोसल का महेन्द्र—यह दक्षिण कोसल का क्षेत्र था, जिसकी राजधानी श्रीपुर (सिरपुर, मध्यप्रदेश) थी। इस राज्य के अन्तर्गत आधुनिक मध्यप्रदेश के बिलासपुर, रायपुर और दुर्ग के जिले तथा उड़ीसा का संभलपुर और गंजाम का कुछ क्षेत्र सम्मिलित था। यहाँ का शासक महेन्द्र था।

महाकान्तार का व्याघ्रराज—व्याघ्रराज के आधिपत्य वाला महाकान्तार क्षेत्र राखालदास बनर्जी के अनुसार पूर्वी गोंडवाना का वन्यप्रदेश था, जिसकी पहचान विन्ध्य के वनों से की जाती है। स्मिथ के अनुसार यह राज्य उत्तर प्रदेश के नचना (आजमगढ़) तक फैला रहा होगा। अभिलेखों के आधार पर यहाँ के शासक को वाकाटक राज पृथ्वीषेण प्रथम का सामन्त माना जाता है। भण्डारकर के अनुसार वह उच्चकल्प के राजा जयन्त का पिता था, और वाकाटकों के अधीन मध्यप्रदेश में शासन कर रहा था।

कौरल का मण्टराज—कौरल की पहचान करने में अधिकांश विद्वान असमर्थ रहे हैं। नामसाम्य के आधार पर फ्लीट ने इसे केरल माना है। कीलहर्न ने कौरल अथवा कैरल का समीकरण गोदावरी और कृष्णा के बीच स्थित कोलेरु कासार नामक स्थल से किया है। अन्य विद्वानों ने इसकी पहचान कोल्लुरु (कोलेर झील), महानदी तट स्थित सोनपुर, चेरल (नागपुर) आदि अनेक स्थलों से की है। इसके अतिरिक्त भी इस स्थल का विभिन्न स्थलों से समीकरण किया जाता है। विभिन्न तर्क-वितर्क के पश्चात् विद्वान इसे पूर्वी तटवर्ती क्षेत्र में कहीं मानते हैं। यहाँ का शासक मण्टराज था।

पिष्टपुर का महेन्द्रगिरि—आन्ध्रप्रदेश के गोदावरी जिले में पीठापुर नामक स्थान के राजा महेन्द्रगिरि से इसकी पहचान की जाती है।

कोट्टूर का स्वामिदत्त—फलीट और आयंगर इसकी पहचान कोयम्बटूर जिले से करते हैं। भौगोलिक दृष्टि से इसकी पहचान गंजाम जिले में महेन्द्रगिरि से १२ मील दक्षिण-पूर्व स्थित कोथूर अथवा विजिगापट्टन (विशाखापट्टनम) जिले में पहाड़ियों की तली में स्थित कोल्तूर से करना उचित प्रतीत होता है। यहाँ राजा स्वामिदत्त का शासन था।

एरण्डपल्ल का दमन—फ्लीट द्वारा इसकी पहचान खानदेश के एरण्डोल नामक स्थल से की गई है। अन्य विद्वानों ने इसकी पहचान विशाखापट्टनम् के शिकाकुल के निकट स्थित अरण्डपल्ली अथवा एण्डीपल्ली अथवा एलोर तालुका के एण्डपल्ली अथवा गोदावरी के चेण्टलपुडी तालुका स्थित एरगुण्टपल्ली से की है। यहाँ का शासक दमन था।

काँची का विष्णुगोप—इसकी पहचान चिंगलेपुत जिले के सुप्रसिद्ध काँचीपुरम् से की जाती है। यहाँ का राजा विष्णुगोप था जिसकी पहचान पल्लव वंशी युवा महाराज विष्णुगोपवर्मन प्रथम से की जाती है।

अवमुक्त का नीलराज—अवमुक्त संभवतः काँची व वेंगी के मध्य स्थित एक छोटा सा राज्य था। काशीप्रसाद जायसवाल हाथी गुम्फा अभिलेख के आधार पर पिथुण्डा और रायचौधुरी गोदावरी जिले में येमाम के निकट नीलपल्ली नामक समुद्रतटवर्ती पत्तन से इसकी पहचान करते हैं। यहाँ का शासक नीलराज था।

वेंगी का हस्तिवर्मन—कृष्णा और गोदावरी के बीच एल्लोर से सात मील उत्तर में स्थित वेंगी अथवा पेडुवेंगी से इसकी पहचान की जाती है। राय चौधुरी, मजूमदार और डी०सी० सरकार यहाँ के शासक हस्तिवर्मन की पहचान शालंकायन वंश के हस्तिवर्मा प्रथम से करते हैं।

पालक्क का उग्रसेन—रायचौधुरी, एलन, रामदास आदि अधिकांश विद्वानों ने पालक्क (पालक) को नेल्लौर जिले में कृष्णा के दक्षिण में स्थित पलक्कड अथवा पालत्कर माना है। यहाँ का राजा उग्रसेन था।

देवगाष्ट्र का कुबेर—फ्लीट, गुप्ते आदि विद्वानों ने देवराष्ट्र को महाराष्ट्र माना था। किन्तु दुब्रायल, रायचौधुरी, मजूमदार और सरकार प्रभृत विद्वानों ने इसे एलामांचिली सिद्ध किया है। यहाँ का शासक कुबेर था।

कौस्थलपुर/कुस्थलपुर का धनंजय—प्रारम्भ में कौस्थलपुर की पहचान महाभारत के कुरुस्थल से की जा रही थी। किन्तु बाद में उसे उत्तरी अर्काट में पोलर के निकट स्थित कुट्टलूर माना गया। यहाँ का शासक धनञ्जय था।

उपरोक्त राज्यों की भौगोलिक स्थिति की विवेचना करने पर यह स्पष्ट होता है कि समुद्रगुप्त ने यह सामरिक अभियान बंगाल की खाड़ी के तटवर्ती दक्षिण के पूर्वी भाग तक सीमित रखा। मध्यप्रदेश के वन्य प्रदेशों से होते हुए वह उड़ीसा के तटवर्ती क्षेत्रों की ओर बढ़ा और वहाँ से गंजाम, विशाखापट्टनम्, गोदावरी, कृष्णा, नेल्लोर जिलों से होते हुए मद्रास के कांचीपुरम् तक पहुँच गया। आर०सी० मजूमदार का विचार है कि बंगाल की खाड़ी के किनारे-किनारे किया गया समुद्रगुप्त का अभियान जल और थल दोनों प्रकार की सेनाओं से संयुक्त था। उनके इस कथन का आधार यह है कि उसने भारतीय महासागर के अनेक द्वीपों को पद दलित किया अथवा उन्होंने स्वयं ही भयभीत होकर उसकी सत्ता स्वीकार कर ली थी।

समुद्रगुप्त की नीतियों से यह स्पष्ट है कि वह न केवल एक महान योद्धा और सफल रणवीर था बल्कि कुशल नीतिज्ञ एवं दूरदर्शी था। वह समझता था कि इतने दूरस्थ प्रदेशों पर सीधे नियन्त्रण करना अत्यन्त कठिन और सम्भवतः असम्भव होगा। इसीलिए उसने बन्दी राजाओं को मुक्त कर उनपर अपना अनुग्रह प्रदर्शित किया। इसे ही रघुवंश में कालिदास द्वारा धर्मविजय का नाम दिया गया है—

गृहीत प्रतिमुक्तस्य स धर्मविजयी नृपः।
श्रियं महेन्द्रनाथस्य जहार, न तु मेदिनीम्॥

दक्षिण-विजय के पश्चात समुद्रगुप्त आर्यावर्त के अभियान पर निकला और वहाँ उसने नौ राजाओं को पराभूत किया—

रुद्रदेव—के०एन० दीक्षित और के०पी० जायसवाल के अनुसार रुद्रदेव वाकाटक राज रुद्रसेन था। किन्तु प्रयाग प्रशस्ति में उल्लिखित रुद्रदेव आयावर्त का शासक है, जबकि वाकाटक रूद्रसेन दक्षिण का। कुछ विद्वान उसकी पहचान पश्चिमी क्षत्रप रुद्रदामन अथवा उसके पुत्र रुद्रसेन तृतीय से करते हैं। किन्तु

भौगोलिक स्थिति के आधार पर यह समीकरण भी स्वीकार नहीं किया जाता। रुद्रदेव की सर्वाधिक सटीक पहचान कौशाम्बी के रुद्रदेव से की जाती है। इसकी पुष्टि कौशाम्बी से प्राप्त सिक्कों, उसकी तिथि, सिक्कों और प्रयाग-प्रशस्ति की लिपि की समानता आदि से होती है।

मतिल—फ्लीट और ग्राउस ने 'मतिल' अंकित मिट्टी की एक मुहर के आधार पर उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर के निकटवर्ती क्षेत्र को मतिल माना है। किन्तु इस मुहर पर कोई उपाधि न होने के कारण एलन इस मत को संदिग्ध मानते हैं।

नागदत्त—रैप्सन के विचार से यह नागसेन और गणपतिनाग के समान कोई नागराज रहा होगा। जायसवाल नागदत्त को लाहौर से प्राप्त चौथी शताब्दी ईस्वी की एक मुहर से ज्ञात, महेश्वरनाग का पिता मानते हैं। सरकार के अनुसार वह उत्तरी बंगाल का शासक था।

चन्द्रवर्मन—चन्द्रवर्मन की पहचान बांकुड़ा (बंगाल) के समीप सुसुनिया पर्वत पर स्थित अभिलेख में उल्लिखित चन्द्रवर्मन के रूप में की जाती है। वह पुष्कर्ण नरेश सिंहवर्मन का पुत्र था। पुष्कर्ण को पोखरण के रूप में पहचाना जाता है। किन्तु पी०एल० गुप्त चन्द्रवर्मन को बंगाल का शासक नहीं स्वीकार करते। उनके अनुसार, "बंगाल का अधिकांश भाग पहले से ही गुप्त साम्राज्य के अन्तर्गत था और अभिलेख में किसी बंगाल के शासक का उल्लेख नहीं जान पड़ता।" वे इसे मन्दसौर के दूसरे अभिलेख में उल्लिखित नरवर्मन का भाई और सिंहवर्मन का पुत्र मानते हैं।

नन्दि—कुछ विद्वान इसकी पहचान पुराणों में उल्लिखित नन्दियशस् या शिवनन्दि से करते हैं। किन्तु यह पहचान असंदिग्ध नहीं है।

बलवर्मन—दाण्डेकर के अनुसार यह हर्षवर्धन के समकालीन कामरूप के राजा भास्करवर्मा का पूर्वज था। किन्तु कामरूप की गणना आर्यावर्त के अन्तर्गत नहीं की जाती है। साथ ही अभिलेख में असम का उल्लेख आर्यावर्त से भिन्न स्वतन्त्र राज्य के रूप में हुआ है। कुछ इतिहासकार इसे गया में राज्य कर रहे मौखरियों का पूर्वज मानते हैं।

आर्यावर्त के इन नौ राजाओं के विषय में रैप्सन का विचार है कि ये पुराणों में उल्लिखित नाग शासक हैं। यदि वास्तव में ऐसा ही है, तो पी०एल० गुप्त के शब्दों में, "नागों के उच्छेदक के रूप में गुप्तों का लांछन गरुड़ सार्थक है।"

अभिलेख में आर्यावर्त के उपरोक्त नौ राजाओं के अतिरिक्त अन्य बहुत से राजाओं को अपने राज्य में समेट लेने का उल्लेख है (अनेकार्यावर्त-राज-प्रसभोद्धारण)। कुछ विद्वानों का मानना है कि ये छोटे-छोटे अनेक राज्य थे, जिन्होंने संगठित होकर समुद्रगुप्त का सामना किया था। किन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता।

आर्यावर्त की विजय के पश्चात समुद्रगुप्त ने आटविकों से अपनी अधीनता मनवाई। आटविकों से तात्पर्य वन-निवासी जाति से होता है। फ्लीट के विचार से ये वनवासी गाजीपुर से जबलपुर के बीच फैले वनों में निवास करते थे। कोटाटवी, वटाटवी और सहलाटवी आदि उल्लेखों से स्पष्ट है कि उन दिनों अनेक अटवी रहे होंगे। मोनियर विलियम्स द्वारा उल्लिखित विन्ध्याटवी के नाम से सम्भवत: मथुरा से नर्मदा तक की भूमि जानी जाती थी। इसी भूभाग पर समुद्रगुप्त के अधिकार की पुष्टि एरण अभिलेख से होती है। अत: सम्भव है कि इसी क्षेत्र का उल्लेख प्रयाग-प्रशस्ति में आटविक के रूप में किया गया है।

उपरोक्त विजयों के पश्चात् समुद्रगुप्त अत्यन्त शक्तिशाली हो गया। उसके शौर्य व पराक्रम के कारण उसके साम्राज्य के सीमान्त पर स्थित राज्य और गणतन्त्र कर (सर्वकर दान), आज्ञापालन (आज्ञाकरन), नमन और दरबार में उपस्थिति (प्रणामागमन) द्वारा उसके प्रचण्ड शासन का परितोष करने को उत्सुक रहने लगे थे। ये निम्नलिखित पाँच सीमान्त के राज्य थे—

समतट—वृहत्संहिता के अनुसार भारत का पूर्वी भाग समतट के नाम से जाना जाता था। युआन-च्वांग ने इसे ताम्रलिप्ति के पूर्व का समुद्रतटवर्ती प्रदेश कहा है, जिसकी राजधानी कर्मान्त अथवा कुमिल्ला जिला स्थित बड़कामता थी।

डवाक—फ्लीट इसकी पहचान ढाका से, स्मिथ-बोगरा, दिनाजपुर और राजशाही जिलों से, भण्डारकर चटगाँव और त्रिपुरा के पर्वतीय भूभाग से मानते हैं। किन्तु अधिकांश विद्वान इसे आसाम के नवगाँव में स्थित डवाक मानते हैं।

कामरूप—आसाम का गुवाहाटी जिला व उसके समीपवर्ती कुछ क्षेत्र कामरूप कहलाता है।

नेपाल—समुद्रगुप्त के साम्राज्य की उत्तरी सीमा पर नेपाल स्थित था।

कर्तृपुर—यह सम्भवत: जालन्धर जिले का करतारपुर और कटुरिया का संयुक्त क्षेत्र था। कुछ अन्य विद्वान इसे कुमायूँ, गढ़वाल और रूहेलखण्ड का विस्तृत क्षेत्र कटयूर राज मानते हैं।

समुद्रगुप्त के विशाल राज्य के पश्चिम और उत्तर-पश्चिम सीमाओं पर स्थित निम्नलिखित गणराज्य उसे कर देकर प्रसन्न करते थे—

मालव—महाभारत, काशिकावृत्ति आदि ग्रन्थों से मालवों के विषय में ज्ञान प्राप्त होता है। अधिकांश विद्वान मालव को मल्लोह मानते हैं जिन्होंने पंजाब में सिकन्दर के आक्रमण का प्रतिरोध किया था। उत्तरवर्ती काल में वे पूर्वी राजस्थान में बस गए थे और टोंक के निकट कर्कोटनगर के समीपवर्ती क्षेत्रों पर उनका अधिकार था। यहाँ से चौथी शताब्दी ईस्वी के उनके सिक्के बहुत बड़ी संख्या में प्राप्त हुए हैं। जिन पर 'मालवानां जय:' या 'मालवगणस्य जय:' लेख अंकित है। विद्वानों का विचार है कि समुद्रगुप्त के काल में इनका अधिकार मेवाड़, टोंक और दक्षिण पूर्वी राजस्थान क्षेत्र पर था।

आर्जुनायन—आर्जुनायनों का उल्लेख पाणिनि की अष्टाध्यायी से प्राप्त होता है। उनके 'आर्जुनायानां जय:' अंकित सिक्कों की प्राप्तिस्थलों के आधार पर उन्हें मथुरा के पश्चिम, दिल्ली-जयपुर-आगरा के त्रिकोणीय स्थल का स्वामी माना जाता है।

यौधेय—पाणिनि के अनुसार यौधेय आयुधजीवी संघ था और वाहीकों के बीच अवस्थित था। विभाजन पूर्व का समूचा पंजाब प्रान्त वाहीक प्रदेश कहा जाता था। उनके सिक्कों की प्राप्ति के आधार पर उन्हें बहुधान्यक प्रदेश (हरियाणा) का निवासी माना जाता है और जिनकी राजधानी रोहितक (रोहतक) थी। स्थान परिवर्तन करते हुए वे राजस्थान, फिर सतलज तथा व्यास के बीच के भूभाग पर प्रवजित हो गए जहाँ उनकी राजधानी सुनेत (लुधियाना के निकट) बनी। समुद्रगुप्त के आक्रमण के समय भी वे यहीं निवास कर रहे थे।

मद्रक—उपनिषदों, महाभारत और पाणिनि की अष्टाध्यायी से ज्ञात होता है कि मद्रक वाहीक (पंजाब) में रहते थे और उनकी राजधानी शाकल (स्यालकोट) थी। समुद्रगुप्त के विजय-अभियान के समय वे राजस्थान में बीकानेर के उत्तरपूर्वी सीमा पर भद्र नामक स्थान पर रहते थे।

आभीर—भिलसा एवं झांसी के मध्य का क्षेत्र आभीर माना जाता है।

प्रार्जुन—स्मिथ और भण्डारकर के अनुसार इस जाति का मध्यप्रदेश के नरसिंहपुर जिले पर राज्य था।

सनकानीक—इस जाति का राज्य भिलसा में था। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के उदयगिरि अभिलेख से भी सनकानीक पर गुप्त आधिपत्य का ज्ञान प्राप्त होता है।

काक—काकों का उल्लेख महाभारत में मिलता है। स्मिथ, रायचौधुरी, और सरकार के विचार से इनका राज्य आधुनिक साँची में था जो विदिशा के निकट स्थित है।

खरपरिक—भण्डारकर खरपरिक को मध्यप्रदेश के दमोह जिले का शासक मानते हैं।

बाद के पाँचों गणराज्यों की स्थिति मध्यप्रदेश में मानी गई है। किन्तु पी०एल० गुप्त महोदय का विचार है कि इन्हें मध्यप्रदेश का निवासी नहीं मानना चाहिए।

प्रयाग-प्रशस्ति में इन गणराज्यों के नामों के अन्त में आदि लिखा है। इससे यह प्रतीत होता है कि इनके अतिरिक्त भी कुछ अन्य गणराज्य रहे होंगे, जिनका महत्व कम होने के कारण उनका नामोल्लेख नहीं किया गया।

समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि कुछ विदेशी और समुद्रपार के राजाओं ने समुद्रगुप्त के पराक्रम के कारण उससे मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किया था। ये विदेशी राज्य निम्नलिखित थे—

देवपुत्र शाहिशाहानुशाही—सर्वप्रथम देवपुत्र-शाहि-शाहानुशाहि का उल्लेख हुआ है। यह अनुमान लगाना कि ये सारी उपाधियाँ किसी एक शासक की थीं अथवा विभिन्न शासको की, अत्यन्त दुष्कर है। कुछ विद्वान इसका अर्थ देवपुत्र, शाहि, शाहानुशाही उपाधि धारण करने वाले तीन कुषाण शासकों से करते हैं, जो उत्तर-पश्चिमी भारत में शासन कर रहे थे। देवपुत्र (तेन-रज) चीनी सम्राट और शाहानुशाही ईरानी सम्राटों की उपाधि होती थी। ये उपाधियाँ बहुत दिनों तक यूनानी, ईरानी और प्राकृत रूपों में उत्तर-पश्चिमी भारत में प्रचारित थीं।

आर०सी० मजूमदार का विचार है कि ये तीनों उपाधियाँ किसी एक कुषाण शासक का बोध कराती हैं, जिसका राज्य काबुल, पंजाब के कुछ अंश और पश्चिम के कुछ क्षेत्रों में था। रायचौधुरी इसमें कुषाणों के अतिरिक्त सासानियों को भी सम्मिलित करते हैं। अल्तेकर के विचार से ये किदार जाति के लोग थे।

शक—शक पश्चिम भारत में शासन कर रहे थे। जिनकी राजधानी उज्जयिनी थी। ये चष्टन और रुद्रदामन के वंशज थे और पश्चिमी क्षत्रपों के नाम से भी जाने जाते थे। अल्तेकर के विचार से समुद्रगुप्त के काल में यहाँ रुद्रसेन तृतीय शासन कर रहा था।

मुरुण्ड—स्टेनकोनो मुरुण्ड को कुषाण मानते हैं। विल्सन हूण और लेवी शक अथवा कुषाण से इनका समीकरण करते हैं। टाल्मी इसकी पहचान मुरुण्डाई से करते हैं जो गंगा के बाईं ओर और घाघरा के दक्षिणी क्षेत्रों में निवास कर रहे थे। जैन ग्रन्थों के अनुसार मुण्डराज कान्यकुब्ज का शासक था और पाटलिपुत्र में निवास करता था। पुराणों में मुरुण्ड अथवा मुरुड का उल्लेख शक, यवन, बुखारा आदि विदेशी जातियों के साथ किया गया है। कुछ विद्वान शक-मुरुण्ड को एक ही मानते हैं क्योंकि मुरुण्ड का शक भाषा में अर्थ 'स्वामी' होता है। पी०एल० गुप्त का विचार है कि ये लोग लम्पाक निवासी होंगे। यह स्थल अलीयाल और कुगार नदी के बीच काबुल नदी के उत्तरी किनारे पर माना जाता है। टॉल्मी के अनुसार उनका क्षेत्र गंगा के किनारे माना जाना चाहिए।

अधिकांश विद्वान दैवपुत्र शाहि-शाहानुशाही के साथ ही शक-मुरुण्ड को भी सम्मिलित करते हुए पूरी उपाधि किसी एक राजा की मानते हैं। कनिंघम, वेबर, कोनो, टॉल्मी आदि विद्वान इस विचार के समर्थक हैं। ये विद्वान इस उपाधि से कुषाणों अथवा सासानी सामन्तों का अर्थ लगाते हैं जिन्हें गुप्तों ने पूर्ववर्ती कुषाणों की चिर-परिचित उपाधियों के माध्यम से उल्लिखित किया है। इस उपधि से तात्पर्य भले ही किसी राजा या कई राजाओं से रहा हो, सर्वाधिक विचारणीय तथ्य यह है कि इनसे आफगानिस्तान और उसके आस-पास के शक-कुषाण (अथवा जो भी माना जाए) राजा (राजाओं) से गुप्तों के मैत्री सम्बन्ध सिद्ध होते हैं।

सिंहल—समुद्रगुप्त के समुद्र पार के मित्रों के रूप में सिंहल का उल्लेख प्राप्त होता है जिसकी पहचान श्रीलंका से की जाती है। सिंहल और भारत के

सम्बन्धों पर अन्य साक्ष्यों से भी प्रकाश पड़ता है। चीनी लेखक वैग-ह्वेन-त्सी के अनुसार सिंहल नरेश मेघवर्ष (ची मी-किया-पो-मो) ने समुद्रगुप्त के पास बहुमूल्य उपहारों के साथ अपना दूत भेजा था और बोधगया में एक विहार बनवाने की अनुमति प्राप्त की थी। युआन-च्वांग के विवरण से इस विहार के एक विराट संस्थान के रूप में विकसित हो जाने का ज्ञान प्राप्त होता है। उसके उल्लेख से भी सिंहलराज द्वारा भारत-नरेश (समुद्रगुप्त) को अपने देश के समस्त रत्न दिए जाने का विवरण मिलता है।

प्रयाग-प्रशस्ति-लेख में सिंहल के अतिरिक्त 'सर्वद्वीपवासी' भी बिना किसी विशेष नाम को इंगित किए, वर्णित हैं। ये सम्भवत: पूर्वी एशिया के भारतीय उपनिवेशों के निवासी होंगे, जिन्होंने महान पराक्रमी सम्राट् समुद्रगुप्त से मैत्री सम्बन्ध बनाए रखना ही श्रेयस्कर समझा। इन उपनिवेशों पर गुप्तकालीन संस्कृति का अत्यधिक प्रभाव पड़ा, जो उनके सिक्कों, मूर्तियों और मंदिरों से स्पष्ट है। फाह्यान के विवरण से भी इस सम्बन्ध की पुष्टि होती है।

उपरोक्त विदेशी राज्यों से समुद्रगुप्त का जो भी सम्बन्ध रहा हो और वृहत्तर भारत पर उसका जैसा भी राजनैतिक प्रभाव रहा हो यह तो निर्विवाद है कि वहाँ समुद्रगुप्त का अत्यधिक प्रभाव था। समुद्रगुप्त की अनुकम्पा प्राप्त करने के लिए इन जातियों ने आत्मनिवेदन (समुद्रगुप्त की सेवा में उपस्थित होकर), कन्योपायन (अपनी कन्याओं का दान करके) और 'गुरुत्मदङ्कस्वविषयभुक्ति शासनयाचनात्' (जायसवाल के अनुसार अपने जिलों और प्रान्तों में गरुड़चिह्न से अंकित गुप्त मुद्राओं के प्रयोग की अनुमति माँग कर, अल्तेकर और मजूमदार के अनुसार अपने जिलों और प्रान्तों में शासन करने के लिए समुद्रगुप्त से गरुड़ चिह्न से अंकित आज्ञापत्र माँगकर) द्वारा समुद्रगुप्त को संतुष्ट किया।

उपरोक्त विवेचन द्वारा समुद्रगुप्त के साम्राज्य विस्तार का आकलन किया जा सकता है। इससे स्पष्ट है कि उसके प्रत्यक्ष शासन के अन्तर्गत पूर्व में सुदूर दक्षिण पूर्वी क्षेत्र को छोड़ कर सम्पूर्ण बंगाल सम्मिलित था। उसकी उत्तरी सीमा हिमालय की तलहटी तक थी। पश्चिम में यौधेय, भद्र और आर्जुनायन के राज्य होने के कारण लुधियाना के पूर्वी जिलों तक उसकी सीमा थी। लुधियाना से यह सीमा दक्षिण में हिसार होते हुए दिल्ली की ओर दक्षिण-पूर्व दिशा में बढ़ती थी। और दिल्ली से यमुना के किनारे-किनारे होते हुए पूरब की ओर मिर्जापुर की तरफ मुड़ जाती थी। जहाँ से सीधे दक्षिण रीवां के भूभाग को बाटती हुई पश्चिम की ओर आती और सागर तथा दमोह जिलों को समेटते हुए जबलपुर होते हुए पूरब की ओर विन्ध्य पर्वत माला के किनारे-किनारे घने वनों वाले पर्वतीय प्रदेशों से होते हुए महानदी ओर उसके किनारे-किनारे चलते हुए समुद्र तक पहुँचती थी। इस प्रकार उसके अन्तर्गत कश्मीर, पश्चिमी पंजाब (लुधियाना के पश्चिम), राजस्थान, सिंध

और गुजरात को छोड़कर लगभग सारा उत्तर भारत था और जबलपुर के पूर्व मध्य भारत का पठार भी उसके राज्य में सम्मिलित था।

उपरोक्त राज्यों पर समुद्रगुप्त का प्रत्यक्ष शासन था। उनके अतिरिक्त अनेक ऐसे राज्य थे जो स्वतंत्र तो थे किन्तु कर देने के लिए बाध्य थे। इनमें काश्मीर, शक-कुषाण आदि थे। अर्थात काश्मीर, पश्चिमी पंजाब, पूर्वी राजस्थान, पश्चिम और उत्तर पश्चिम के प्रदेश उसकी सत्ता स्वीकार करते थे। दक्षिण के पूर्वी किनारे के राज्य और कृष्णा से आगे तमिल देश में पल्लव राज भी उसे कर देते थे। सिंहल और संम्भवत भारतीय महासागर के कुछ अन्य द्वीप अथवा पूर्वी द्वीप समूह समुद्रगुप्त के प्रति विनीतादर का भाव रखते थे।

अपने यशस्वी विजय अभियान के पश्चात समुद्रगुप्त ने अश्वमेध यज्ञ भी किया था, जिसकी पुष्टि उसके उत्तराधिकारियों के सिक्कों और अभिलेखों से होती है। लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित अश्वमूर्ति पर अंकित '... द्धगुत्तस देयदम्भ,' 'पराक्रम' लेख और अश्व चित्रांकित मुहर, प्रभावती गुप्ता के अभिलेख आदि प्रमाणों से इसकी पुष्टि होती है। प्रभावती गुप्ता के अभिलेख में उसे 'अनेकाश्वमेधजयी' कहा गया है, जिससे निष्कर्ष निकलता है कि उसने अनेक अश्वमेध यज्ञ किए थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उसने अश्वमेध यज्ञ अत्यन्त विस्तारपूर्वक किया था और भुलाए जा चुके कर्मों को भी फिर से सम्मिलित किया था।

किन्तु प्रयाग प्रशस्ति में अश्वमेध यज्ञ का कोई उल्लेख नहीं है। सम्भवत: इसकी रचना और उत्कीर्णन के काल तक यह यज्ञ नहीं हुआ था। किन्तु उसके बाद उसने निश्चय ही अश्वमेध यज्ञ किया होगा, जिसकी पुष्टि एरण अभिलेख और उसके सिक्कों से होती है।

हरिषेण द्वारा रचित प्रयाग प्रशस्ति में यद्यपि कुछ अतिरंजना अवश्य ही होगी किन्तु फिर भी यह नि:संदिग्ध रूप से ज्ञात होता है कि समुद्रगुप्त एक दृढ़प्रतिज्ञ और महान राजनीतिज्ञ शासक था। पी०एल० गुप्त के अनुसार, "निस्संदेह वे चक्रवर्ती बनने की कल्पना से आह्लादित थे। किन्तु कुशल राजनीतिज्ञ की भाँति उन्होंने सारे देश को अपने प्रत्यक्ष शासन के अन्तर्गत रखने का प्रयत्न कभी नहीं किया। इसके विपरीत उन्होंने सुदृढ़ केन्द्रीय शासन की स्थापना की जो छोटे राज्यों में विभेदकारी प्रवृत्तियों और उनके पारस्परिक विद्वेषों को रोकने में समर्थ था।" उसने अपने राज्य के चारों ओर फैले छोटे-छोटे राज्यों को जड़ से समाप्त कर दिया किन्तु पूर्वी बंगाल, आसाम, नेपाल आदि पूर्वी सीमान्त राज्यों और पश्चिमी गण-राज्यों को बिना छेड़े करद के रूप में छोड़ दिया। उसने विदेशी शक्तियों से मधुर सम्बन्ध बनाए रखे और कुशल राजनीति का परिचय दिया। पश्चिम में अपने समान पराक्रम वाले वाकाटकों से उसने मैत्री सम्बन्ध बनाए रखा। इस प्रकार अर्जित एक महान और विशाल साम्राज्य की नींव पर उसके उत्तराधिकारियों ने गुप्त वंश का विशाल अट्टालक निर्मित किया।

समुद्रगुप्त की यह सफलता उसके महान व दीर्घ समर अभियानों का परिणाम ही कही जा सकती है। हरिषेण ने उसे शत-समर में सम्मिलित होने वाला कहा है। सिक्कों पर भी उसे 'समर-शत-वितत-विजयी' कहा जाता है। इसीलिए उसके शरीर पर परशु, शर, शंकु, शक्ति आदि विभिन्न अस्त्र-शस्त्रों के घाव सुशोभित होते थे।

महापराक्रमी, शौर्यवान, कुशल राजनीतिज्ञ और श्रेष्ठ शासक होने के साथ ही उसके अनेक मानवीय गुणों का ज्ञान प्रयाग-प्रशस्ति द्वारा होता है। उसके अनुसार समुद्रगुप्त मृदु-हृदय और अनुकम्पा युक्त, दरिद्र, दु:खी और असहायों की सहायता के लिए तत्पर और उदारता की प्रतिमूर्ति था। वह विद्याव्यसनी और उच्चकोटि का कला-प्रेमी व मर्मज्ञ था। हरिषेण के शब्दों में वह सुखमन: प्रज्ञनुसंगोचित, शास्त्रतत्वज्ञ था। उसके दरबार में गुणीजनों का बाहुल्य था, जिसकी सहायता से वह अन्य गुणीजनों को परख कर स्वयं भी कविताओं की रचना करता था। वह अपनी विद्वत्सभा का उपजीव्य था (विद्वज्जनोपजीव्य)। राजशेखरकृत काव्यमीमांसा के अनुसार जो राजा अपनी विद्वत्सभा के अध्यक्ष होते हुए राजकवियों को नवीन-विचार प्रदान करने वाली काव्य रचना करने में सक्षम होते थे उन्हें उपजीव्य कहा जाता था। इसीलिए हरिषेण ने उन्हें अनेक कविताएँ करने वाला महान कविराज कहा है। (अनेक काव्य क्रियाभि: प्रतिष्ठित कविराज)

महाकवि होने के साथ ही वह महान संगीतज्ञ भी था, जिसकी तुलना हरिषेण ने वृहस्पति, तुम्बरु, नारद आदि संगीतकारों से की है। उसके सिक्कों से भी वीणा-वादन के प्रति उसकी अभिरुचि प्रदर्शित होती है।

इस प्रकार हरिषेण रचित प्रयाग प्रशस्ति से समुद्रगुप्त के कुशल राजनीतिज्ञ, पराक्रमी साम्राज्य विस्तारक, अतीव शौर्यशाली होने के साथ ही सहृदयी, कला-प्रेमी व मर्मज्ञ, दु:खीजनों के त्राता, विद्वान आदि होने के प्रमाण प्राप्त होते हैं।